

योगेन्द्र यादव से सुरेन्द्र पाल सिंह का बेबाक साक्षात्कार

सुरेन्द्र पाल सिंह - आज देश में कृषि के संकट की चर्चा हो रही है। आप इसे कैसे परिभाषित करते हैं? इस संकट के क्या कारक हैं?

योगेन्द्र यादव - जब हम कहते हैं कि भारतीय कृषि संकट में है, तो इसका मतलब है कि खेती-किसानी की समस्या केवल समय या स्थान विशेष से जुड़ी नहीं है, ये केवल किसी एक मौसम या किसी खास क्षेत्र या किसी विशेष फसल तक सीमित नहीं है। ये सही है कि किसी साल सूखे या अन्य किसी आपदा के चलते यह समस्या ज्यादा गहरी हो जाती है, यही सब की नजर में आ जाती है। बीच-बीच में किसी खास फसल से संबंधित समस्या भी आती रहती हैं। लेकिन असल में अब यह एक शाश्वत ढांचगत संकट है — हर साल, हर फसल और हर तरह के किसान को प्रभावित करने वाला संकट है। ये ऐसा संकट है जो हमारे आर्थिक विकास के ढांचे में अन्तर्निहित है।

यह संकट तीन रूपों में हमारे सामने पेश होता है — एक पर्यावरण का संकट, दूसरा आर्थिक संकट और तीसरा किसान के अस्तित्व का संकट। एक समय में हरित क्रांति की आधुनिक खेती को भारतीय कृषि के लिए रामबाण माना जाता था। लेकिन आज वही हरित क्रांति पर्यावरण के एक संकट के रूप में दुस्वप्न की शकल ले चुकी है। पंजाब इसका ज्वलंत उदाहरण है। हरित क्रांति की चमक जल्दी ही फीकी पड़ गई, क्योंकि यह अत्यधिक संसाधनों के बल पर आधारित थी। खाद और कीटनाशक दवाइयों की अंतहीन जरूरत को हमारे किसान पूरा नहीं कर सकते, न ही हमारी मिट्टी इसे बर्दाश्त कर पाई। जिस हरित क्रांति को देश के सामने कृषि-माडल के तौर पर पेश किया जाता था, आज उसके परिणामों के तौर पर भू-जल संकट, जमीन में सेम, भूमि की उर्वरता-शक्ति में गिरावट को झेल रहे हैं। फिर भी देश भर में हम ऐसी फसलें उगा रहे हैं जो उस जलवायु के लिए बिल्कुल भी मुफीद नहीं हैं।

आर्थिक संकट उत्पादन और उत्पादक दोनों का संकट है। हम खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर जरूर हो गए हैं, लेकिन हमारी उत्पादकता अंतर्राष्ट्रीय मानकों से काफी कम है। खाद्यान्न की मुख्य फसलों के अलावा अन्य फसलों के उत्पादन पर अभी सवालिया निशान हैं। सरकारी चर्चा में कभी-कभी इस पर बातचीत होती है, लेकिन सबसे गंभीर चिंता की बात ये है कि उत्पादन बढ़ने के बावजूद उत्पादक यानी किसान की हालत बिगड़ती जा रही है। इसकी किसी सरकार को चिंता नहीं है। किसानों को आज घाटे का सौदा बन कर रह गई है। फसल की अच्छी पैदावार पर किसान किसी तरह बस अपना खर्च निकाल पाते हैं। खराब फसल के समय उनका खर्च भी पूरा नहीं होता। इस तरह किसान कर्ज के जाल में फंसते जाते हैं। इस दुष्चक्र की अंतिम परिणति है आत्महत्या। किसान-आत्महत्याओं की त्रासदी को आप केवल उसकी संख्या के सरकारी आंकड़ों से नहीं नाप सकते। याद रखिये कि अगर पांच किसान आत्महत्या करते हैं तो शायद एक ही रिपोर्ट होती है, बाकी परिवार मान-प्रतिष्ठा के चलते चुप्पी लगा जाते हैं। यह भी याद रखें कि अगर एक किसान आत्महत्या करता है तो कम से कम सौ के मन में यह विचार आता है।

इन दोनों से जुड़ा है खेती-किसानी के अस्तित्व का संकट। किसानों की समस्या की बात केवल उनकी फसल के मूल्य और फसल के खर्च तक सीमित रहती है। उनके जीवन के दूसरे पहलुओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विमर्श से आमतौर पर गायब हो रहते हैं। गरिमापूर्ण जीवन जीने की मूलभूत जरूरतों को पूरा करने का खर्च आसमानों को छू रहा है। बड़ी जोत वाला किसान भी इन खर्चों को पूरा करने में असमर्थ है। इसलिए कोई किसान अपने बेटे को किसान नहीं बनाना चाहता, अपनी बेटे के लिए नौकरी-पेशा दामाद ढूँढता है। आज किसानों की जीवनशैली खत्म होने के कगार पर है।

सुरेन्द्र पाल सिंह - कृषि व कृषक समुदाय पर संकट की आंटे ही रहे हैं और किसान उसका प्रतिरोध भी करते ही रहे हैं। आपकी नजर में आज के किसान आंदोलन में क्या नया है?

योगेन्द्र यादव - आज देश का किसान आंदोलन एक नए युग में प्रवेश कर रहा है। पिछले ढाई महीनों में देश भर में किसानों की नई ऊर्जा उभरी है, किसानों का नया नेतृत्व सामने आया है, उनमें नया संकल्प उभरा है। लेकिन इसे नया युग कहने का सबसे बड़ा कारण किसान आंदोलन का बदलता स्वरूप है।

आज का किसान आंदोलन आजादी के पहले और अस्सी के दशक के आंदोलनों से बहुत अलग है। अंग्रेजी राज के दौरान हुए किसान विद्रोह मूलतः औपनिवेशिक राज द्वारा स्थापित शोषक कृषि व्यवस्था के विरुद्ध थे। मोपला विद्रोह, चम्पारण सत्याग्रह, बारदोली सत्याग्रह और तेभागा आंदोलन जैसे किसान आंदोलनों ने कृषि व्यवस्था के सबसे शोषित वर्ग के न्यूनतम अधिकार की आवाज उठाई

थी। अन्यायपूर्ण लगान, नील की बंधुआ किसानों और बटाईदार को फसल का कम से कम एक तिहाई हिस्सा देने की मांग पर चल रहे आंदोलनों ने किसानों को एक राजनैतिक पहचान दी थी।

आजादी के बाद पहले चालीस साल तक किसानों ने स्वराज में न्याय मिलने का इंतजार किया। उसके बाद कर्नाटक में नन्जुन्दस्वामी, महाराष्ट्र में शरद जोशी और उत्तर प्रदेश में महेंद्र सिंह टिकेत के नेतृत्व में किसान आंदोलनों का एक नया दौर शुरू हुआ। यह अपेक्षाकृत सक्षम भूस्वामी का आंदोलन था। इस आंदोलन का मुख्य मुद्दा था किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोतरी। इस आंदोलन का नेतृत्व वह वर्ग कर रहे थे जिसे राजनीतिक सत्ता में कुछ हिस्सा मिला लेकिन जो किसान होने के नाते आर्थिक समृद्धि से वंचित थे।

सुरेन्द्र पाल सिंह - तो क्या अब किसान की परिभाषा बदल रही है, किसान नेतृत्व की पृष्ठभूमि बदल रही है, किसान आंदोलन के मुद्दे बदल रहे हैं और वैचारिक सरोकार भी बदल रहे हैं? यह किसान आंदोलन के चरित्र में बदलाव किसानों की दशा और दिशा किस तरह बदल सकता है?

योगेन्द्र यादव - इक्कीसवीं सदी के किसान आंदोलन पिछले दोनों आंदोलनों से कई मायनों में भिन्न हैं। किसानों की नई परिभाषा का विस्तार हो रहा है। इस नई परिभाषा में किसान का मतलब सिर्फ बड़ा भूस्वामी नहीं बल्कि मझौला और छोटा किसान भी है, ठेके पर किसानों करने वाला बटाईदार और खेतियार मजदूर भी है। जमीन जोतने वाले के साथ पशुपालन, मृगीपालन और मछली पालन करने वाले को भी किसान के दायरे के भीतर शामिल किया जा रहा है।

पहली बार किसान आंदोलन आदिवासी और दलित को किसानों की तरह स्वीकार करने को तैयार है। खेती में दो तिहाई मेहनत करने वाली औरतों को अब तक किसानों की परिभाषा से बाहर रखा गया है। इस नए आंदोलन में उनकी भूमिका को स्वीकार करने का मानस बन रहा है। किसानों की परिभाषा का यह विस्तार जरूरी था। जैसे-जैसे किसानों की संख्या बढ़ रही है वैसे-वैसे किसानों के किसी एक हिस्से को लेकर आंदोलन चलाना असंभव है। हर तरह के किसानों को जोड़कर ही किसान आंदोलन नई ऊर्जा प्राप्त कर सकता है।

नए किसान आंदोलन के वैचारिक सरोकार और मुद्दे भी पुनः परिभाषित हो रहे हैं। आजादी के बाद के किसान आंदोलन द्वैतवादी थे — एक तरफ भारत बनाम इंडिया का मुहावरा था तो दूसरी तरफ जमींदार बनाम खेतियार मजदूर का द्वंद्व था। नया किसान आंदोलन अद्वैतवादी है। किसानों के भीतर ऊंच-नीच का वर्ग संघर्ष जगाने के बजाय सभी किसानों को जोड़ने का आग्रह इस दौर की विशेषता है। साथ ही किसान बनाम गैर किसान की लड़ाई से बचने की समझ भी विकसित हो रही है। खेती-किसानी को बचाने की लड़ाई प्रकृति को बचाने की लड़ाई है जिसमें किसानों और गैर किसानों को एकजुट होना होता है।

सुरेन्द्र पाल सिंह - कर्ज मुक्ति और फसलों के उचित दाम की मांग में नया क्या है। ये मांगें तो किसान आंदोलन में हमेशा ही रही हैं।

योगेन्द्र यादव - सही है कि पहली नजर में कर्ज मुक्ति और फसलों के पूरे दाम की मांग में कुछ भी नया नहीं लगेगा, लेकिन आज इन पुरानी मांगों को नए तरीके से निरूपित किया जा रहा है। फसल के पूरे दाम का मतलब अब केवल सरकारी न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोतरी नहीं है। किसानों के आंदोलनों ने सीख लिया है कि यह मांग बहुत सीमित है और इसका फायदा दस प्रतिशत किसानों को भी नहीं मिलता इसलिए किसान आंदोलन अब चाहते हैं कि फसल की लागत का हिस्सा बेहतर पद्धति से किया जाय, इस लागत पर कम से कम 50 प्रतिशत बचत सुनिश्चित की जाए।

साथ ही किसानों ने यह भी समझ लिया है कि असली मामला सिर्फ सरकारी घोषणा का नहीं है, असली चुनौती यह है कि सरकारी समर्थन मूल्य सभी किसानों को कैसे मिल सके। इसलिए नए किसान आंदोलनों की मांग है कि सरकारी खरीद के अलावा भी नए तरीके खोजे जाएं, जिससे सभी किसानों को घोषित मूल्य हासिल हो सके।

ठीक इसी तरह कर्ज माफी की पुरानी मांग का विस्तार कर उसे कर्ज-मुक्ति की

मांग में बदल दिया गया है। सिर्फ राष्ट्रीयकृत बैंक और सहकारी/ग्रामीण बैंक के कर्ज से ही नहीं साहूकार के कर्ज से मुक्ति की मांग भी अब जुड़ गई है। अब किसान आंदोलन याचक की तरह कर्ज माफी की प्रार्थना नहीं कर रहा। आज का किसान आंदोलन देश को पिछले 50 साल से दिए अनुदान के बदले कर्ज मुक्ति के अधिकार की बात कर रहा है।

सुरेन्द्र पाल सिंह - सरकार फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती है। फसलों की खरीददारी भी करती है। लेकिन किसान संतुष्ट नहीं होते।

योगेन्द्र यादव - सरकार खुद हर फसल की लागत के आंकड़ें एकत्रित करती है। यह बात भी सही है कि अलग-अलग राज्यों में एक ही फसल की लागत भी अलग-अलग होती है। लेकिन सरकारी आंकड़ों में इसकी राष्ट्रीय औसत लगा ली जाती है।

खुद सरकार की ओर से गठित रमेश चंद समिति ने मान लिया है कि सरकारी आंकड़ों में किसानों की लागत को कम करके आंका जाता है। लेकिन सरकार ने इसे बदलने की कोई कोशिश नहीं की है। असली बात यह है कि देश के अधिकांश किसानों को सरकार का आधा-अधुरा न्यूनतम समर्थन मूल्य भी नसीब नहीं होता। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि केवल 6 प्रतिशत किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य हासिल होता है, शेष तो जो भाव मिले उसी में बेचने को मजबूर होते हैं।

सरकार छाती ठोक कर कहती है कि खरीफ 2017-18 के लिए सब फसलों के दाम बढ़ा दिए गए हैं। धान का समर्थन मूल्य बढ़ाकर 1550 रुपए प्रति क्विंटल कर दिया गया है, जबकि अरहर-तुअर दाल के समर्थन मूल्य में 400 रुपये बढ़ाकर 5450 रुपए कर दिया गया है। खबर छप गयी। अगर ये घोषणा जीएसटी या शेयर बाजार के बारे में होती तो मीडिया बाल की खाल उधेड़ता, लेकिन मामला बेचारी खेती का था इसलिए एकाध विशेषज्ञ और खोजी पत्रकार को छोड़कर किसी ने सरकारी दावों की जांच नहीं की। सच ये है कि सरकार द्वारा की गयी 'बढ़ोतरी' में किसान के खुश होने लायक कुछ भी नहीं है।

धान के मूल्य में पिछले साल की तुलना में 5 प्रतिशत ही वृद्धि की गई यानी सिर्फ महंगाई की बराबरी की गई है। वास्तव में दाम कुछ नहीं बढ़ा है। अरहर-तुअर में बढ़ोतरी जरूर 13 प्रतिशत हुई है, लेकिन सरकार ये सच दबा गयी कि 5450 रुपए का समर्थन मूल्य सरकार के आर्थिक सलाहकार अरविन्द सुब्रमण्यम द्वारा सुझाये 6000 रुपए से अब भी बहुत कम है।

धान की लागत 1484 रुपए है और अगर किसान को 1550 रुपए प्रति क्विंटल का समर्थन मूल्य मिले तो उसे सिर्फ 4 प्रतिशत बचत होगी। अरहर में बचत 18 प्रतिशत तो मूंगफली में 9 प्रतिशत और सोयाबीन में 4 प्रतिशत बचत होगी। यह भी स्मरण रखना होगा कि सत्ता में आने के पहले प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी व उनकी पार्टी ने किसानों से वादा किया था कि उनकी फसलों की लागत पर 50 प्रतिशत का मुनाफा दिलाया जाएगा। उस हिस्साब से देखें तो एक भी फसल में सरकार अपने वादे का आधा भी नहीं दे रही है।

खरीफ की बाकी कई फसलों जैसे कपास, तिल, सुरजमुखी, ज्वार और रागी में सरकार की ओर से घोषित समर्थन मूल्य लागत से भी कम है। यानी पहले से ही सरकार यह मानकर चल रही है कि किसानों को उनकी इन फसलों पर घाटा ही होगा। सरकार जिस तरह समर्थन मूल्य का फैसला करती है उस पर कई किसान संगठनों ने बार-बार सवाल उठाए हैं।

सुरेन्द्र पाल सिंह - मराठा, जाट, पटेल आदि परंपरागत तौर पर मजबूत किसान जातियाँ हैं। पिछले समय में सरकारी नौकरियों में पिछड़े वर्ग में आरक्षण पाने के लिए ये जातियाँ उग्र आंदोलन कर रही हैं। कृषि संकट के दौर में आप इसे कैसे देखते हैं?

योगेन्द्र यादव - दुर्भाग्य से शिक्षा-स्वास्थ्य-रोजगार आदि अस्तित्व के मूलभूत सवालों को किसान आंदोलनों में मुख्य अभिव्यक्ति नहीं हुई है। किसान आंदोलनों में न्यूनतम समर्थन मूल्य और कर्ज के सवाल ही छूए रहे हैं। जीवन के ये मूलभूत सवाल विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते हैं। मराठा, जाट, पटेल आरक्षण-आंदोलनों में भी ये सवाल दूसरे रूपों में आ रहे हैं। असल में ये आरक्षण-आंदोलन किसानों की बदहाली को उजागर



कर रहे हैं। लेकिन मांग गलत दिशा में है, जो ठिक नहीं सकती। 'मैं किसान हूँ। मैं गरीब हूँ। मेरी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो।' ये कहने को बजाए वो कहता है कि 'मैं मराठा हूँ मुझे आरक्षण दो।'

सुरेन्द्र पाल सिंह - आप किसान समस्या को लेकर निरंतर किसान मुक्ति यात्राएं कर रहे हैं। उसमें किस तरह के किसान व उनका नेतृत्व शामिल रहता है और किसानों के संकट का हल किस तरह देखते हैं?

योगेन्द्र यादव - इन यात्राओं का मकसद यही है कि किसानों की समस्याओं को लेकर एक दीर्घकालीन हल निकाला जाए। इस समाधान की तलाश के लिए हमें किसान के दर्द के मूल यानी फसल के दाम के सवाल में जाना पड़ेगा। हर कोई जानता है कि हर साल सरकार की नीतियों के कारण किसानों को फसलों के दाम पूरे नहीं मिल पाते और उनको भारी घाटा होता है। लेकिन यह घाटा कितना होता है, इस सवाल का जवाब ढूँढना

आसान नहीं है। सत्ता जिस सच का सामना नहीं करना चाहती उसे फाइलों के ढेर में दबा कर रखती है। जबवा खोजने के लिए आपको सरकारी रिपोर्ट, आंकड़ों और किसानों के अनुभव को जोड़ना होगा। किसान मुक्ति यात्राएं नए दौर के नए किसान आंदोलन की झलक दिखाती हैं। इसमें पिछले दो-तीन दशकों से किसानों के बीच संघर्ष करने वाले विरुद्ध किसान नेता हैं तो साथ में दलित आदिवासी संघर्ष में शामिल कार्यकर्ता भी हैं। पहली बार किसी राष्ट्रीय किसान समन्वय में महिला नेतृत्व की झलक और महिला आंदोलन के मुद्दों की खनक महसूस हो रही है। पहली बार किसान आंदोलन सोशल मीडिया और नई तकनीकी का इस्तेमाल कर रहा है।

किसान आंदोलन की विरासत को मंदसौर, बारदोली और खेड़ा को याद करने वाली यह यात्रा एक ओर तो नर्मदा के विस्थापित किसानों के संघर्ष से जुड़ी वहीं दूसरी ओर यह यात्रा मेहसाणा में दलित संगठनों के आजादी कूच का हिस्सा यानी 18 जुलाई से दिल्ली पहुंच कर यह यात्रा जंतर-मंतर पर एक धरने की शकल ली तो देश के किसान आंदोलन के तीसरे दौर की शुरुआत का औपचारिक ऐलान हो गया।

सुरेन्द्र पाल सिंह - क्या यह किसान आंदोलन सिर्फ सुर्खियों और सहानुभूति बटोर कर संतुष्ट हो जायेगा। या सरकारों से महज एक-दो टुकड़े लेकर चुप तो नहीं हो जायेगा। या फिर किसानों का यह उभार देश में किसानों की अवस्था को बदल कर ही दम लेगा?

योगेन्द्र यादव - इसका उत्तर आने वाले कुछ दिनों में मिलेगा। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि किसान विद्रोह एक संगठित स्वरूप ले पाता है या नहीं। आज देश भर का किसान आंदोलन पूरी तरह से बिखरा हुआ है। आज या तो पार्टियों के पालतू किसान संगठन जो विपक्ष में होने पर विरोध करते हैं, या फिर अपनी पार्टियों के सत्ता में आने के बाद प्रचारक या दलाल बन जाते हैं। जाहिर है, ऐसे संगठनों की सदस्यता अधिक होने के बावजूद विश्वसनीयता नहीं बन पाती। या फिर छोटे-छोटे, स्वतंत्र किसान संगठन हैं, जिनका असर एक-दो जिलों से आगे नहीं है। आज देश का किसान आंदोलन बंटा हुआ है। अलग-अलग राज्य के किसान, अलग-अलग फसल उगाने वाले किसान, अलग-अलग जातियों के किसान आपस में बंटे हुए हैं, भूमिस्वामी,

बटाईदार और भूमिहीन मजदूर बंटे हुए हैं। जाहिर है, इसी कारण से वर्तमान किसान विद्रोह एक सूत्र में नहीं जुड़ पा रहा है। अलग-अलग राज्यों में स्वतःस्फूर्त तरीके से यह विद्रोह उठ रहा है और अलग-अलग दिशा में बढ़ रहा है। आने वाले दिनों में अलग-अलग संगठनों ने अलग-अलग कारवाइयों की घोषणा की है। शुरुआत में यह स्वाभाविक है, लेकिन अगर जल्द ही किसान विद्रोह में राष्ट्रीय समन्वय नहीं होता है, तो इस आंदोलन को टिकाए रखना बहुत मुश्किल होगा।

सुरेन्द्र पाल सिंह - अधिकांश किसान संगठन अपने आंदोलन को गैर-राजनीतिक करार देते रहे हैं। जिसे आप नया किसान आंदोलन कह रहे हैं क्या उसका राजनीति से संबंध होगा।

योगेन्द्र यादव - सही है कि परंपरागत किसान आंदोलनों में अपने आप को अराजनीतिक कहने का रिवाज है। अतीत में पार्टियों और सरकारों से मिले धोखे के कारण यह मुहावरा चल निकला है। सच यह है कि शायद ही कोई किसान नेता या संगठन राजनीति से अछूता है। वे सब जानते हैं कि किसान का मुद्दा एक राजनीतिक मुद्दा है। नये किसान आंदोलन को राजनीति से रिश्ते को साफ करना होगा। उसे जो भी मिल सकता है, वह सब राजनीति में दखल दिये बिना संभव नहीं है। इसलिए राजनीति से परहेज की भाषा छोड़ कर किसान आंदोलन को राजनीति में दखल देना होगा। स्थापित दलों की राजनीति करने के बजाय एक नए किस्म की राजनीति खड़ी करनी होगी। किसान अगर राजनीति को लगाम अपने हाथ में नहीं थामेगा, तो सत्ता की राजनीति इस किसान को हांकती ही रहेगी। हाँ, इतना परहेज रखा जा सकता है कि किसान संगठन बतौर किसान संगठन चुनावी राजनीति में हिस्सा न लें।

सुरेन्द्र पाल सिंह - मंदसौर गोलीकाण्ड के बाद किसानों के सवाल पर देश भर में संवेदनाएं उभरीं। उससे किसान आंदोलन को क्या हासिल हुआ।

योगेन्द्र यादव - अहमदनगर जिले के पुणतांबे गांव से जो हड़ताल शुरू हुई थी, वह अब महज एक स्थानीय हड़ताल नहीं रही। पहले यह चिंगारी मध्य प्रदेश पहुंची और वहां मंदसौर के गोलीकांड के बाद से यह आग चारों दिशाओं में फैल गयी है। इस दौरान लगभग हर राज्य से स्वतःस्फूर्त किसान आंदोलन शुरू होने की खबरें आईं। राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु में किसान आंदोलन फैलने के पुख्ता समाचार मिल चुके हैं। कोई हड़ताल का सभार ले रहा है, कहीं धरना, कहीं प्रदर्शन, कहीं बंद, कहीं चक्का जाम वगैरह मानो बरसों से सोया किसान आंदोलन एकाएक जाग उठा है। थके-हारे किसान नेताओं में नया जोश आ गया है, नयी पीढ़ी के नये नेता उभर रहे हैं। बीते दिनों के किसान संघर्ष ने वह हासिल कर लिया, जो किसान आंदोलन पिछले 20 साल से हासिल नहीं कर पाया है।

सरकारों और बाबुओं के पास किसान मुद्दों पर चर्चा का टाइम निकल आया है। मीडिया भी अचानक किसान की सुध ले रहा है। टीवी शो में किसानों की दशा पर चर्चाएं हो रही हैं। पिछले महीनों में किसानों के सवाल पर जितनी चर्चा समाचार और संचार माध्यमों में हुई उससे कम से कम अखबार पढ़ने वाले और टीवी देखने वाले आम शहरी की पता तो लगा कि इस देश का किसान दुखी क्यों है।

मंदसौर गोलीकांड के बाद किसानों के सवाल पर देश भर में संवेदनाएं उभरी हैं, कुछ समझ भी बनी। खुद किसान का संघर्ष मजबूत हुआ और एक संकल्प भी बना। देश भर के किसानों में अपूर्व चेतना का संचार हुआ।

सुरेन्द्र पाल सिंह - आप मंदसौर, अहमदनगर और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में किसानों के प्रतिरोध को विद्रोह का नाम दे रहे हैं। क्या आपको इन विद्रोहों का क्रांति में तब्दील होने की संभावना दिखाई देती है?

योगेन्द्र यादव - देश में किसानों के विद्रोहों की लंबी श्रृंखला है। औपनिवेशिक काल में एक छोटी सी घटना जंगल की आग की तरह बड़े इलाके में फैल जाती थी। पिछले अर्से में हम देखते हैं कि स्वतः स्फूर्त छोटी सी घटना महाराष्ट्र से मध्यप्रदेश व अन्य इलाकों में आग की तरह फैल गई। इनमें कोई राजनीतिक एकसूत्रता नहीं है और नेताओं का नियंत्रण नहीं रहता। किसानों में गहरा रोष व आक्रोश है। किसान राह के चंद टुकड़े नहीं, बल्कि वे अपनी मूल परिस्थितियों को बदलना चाहते हैं। ये प्रतिरोध नहीं, बल्कि विद्रोह के लक्षण हैं। इस विद्रोह को क्रांति में बदलने के लिए एक विचार अनिवार्य है। अभी तक ज्यादातर किसान संगठन एक ट्रेड यूनियन की मानसिकता से चलते हैं। उन्हें विकास के माडल से शिकायत नहीं है, बस उसमें किसान का हिस्सा चाहिए। अगर किसान की अवस्था को बदलना है, तो उसे इस कृषि विरोधी विकास के माडल को खारिज करना पड़ेगा।

सरकार छाती ठोक कर कहती है कि खरीफ 2017-18 के लिए सब फसलों के दाम बढ़ा दिए गए हैं। धान का समर्थन मूल्य बढ़ाकर 1550 रुपए प्रति क्विंटल कर दिया गया है, जबकि अरहर-तुअर दाल के समर्थन मूल्य में 400 रुपये बढ़ाकर 5450 रुपए कर दिया गया है। खबर छप गयी। अगर ये घोषणा जीएसटी या शेयर बाजार के बारे में होती तो मीडिया बाल की खाल उधेड़ता, लेकिन मामला बेचारी खेती का था इसलिए एकाध विशेषज्ञ और खोजी पत्रकार को छोड़कर किसी ने सरकारी दावों की जांच नहीं की। सच ये है कि सरकार द्वारा की गयी 'बढ़ोतरी' में किसान के खुश होने लायक कुछ भी नहीं है।